प्रेमचन्द प्रौढ़ शिक्षा माला



पंच परमेश्वर
और
सवा सेर गेहूँ



प्रेमचन्द



प्रेमचन्द प्रौढ़ शिक्षा माला

पंच परमेश्वर

और

सवा सेर गेहूँ

प्रेमचन्द

प्रेमचन्द प्रौढ़ शिक्षा माला—४

पंच परमेश्वर
और
सवा सेर गेहूँ

: प्रेमचन्द :



सरस्वती प्रेस बनारस

प्रकाशक : श्रीपतराय, सरस्वती प्रेस, वाराणसी

भूमिका

प्रेमचन्दजी की यह किताबें खास तौर पर उन लोगों के लिए छापी गई हैं, जो कम पढ़े-लिखे या साक्षर हैं, और ज्यादातर देहातों में रहते हैं। जिन्होंने बड़ी उम्र में अभी पढ़ना सीखा ही है, या थोड़ा पढ़े-लिखे हैं, उन्हें ऐसी किताबों की जरूरत है, जो छोटी हों, पर दिलचस्प, सरल और शिक्षाप्रद हों। इस काम में प्रेमचन्दजी की कहानियाँ बहुत ही उपयोगी हैं। बोल-चाल की सरल और मुहावरेदार भाषा में मनोरंजक कहानी सुनाते-सुनाते प्रेमचन्दजी बड़ी खूबी से गहरी शिक्षा दे जाते हैं। उनकी कहानियाँ पढ़ने वाला झूठ को छोड़कर, सचाई को अपनाता है, विनयी, सेवा-परायण, ईमानदार और नेक बनता है, देश और समाज के लिए बलिदान देना सीखता है।

हमारा विश्वास है कि प्रेमचन्दजी की इन उपयोगी किताबों को केन्द्र और राज्य की सरकारों के प्रौढ़-शिक्षा और शिक्षा-प्रसार-विभाग अपनायेंगे और प्रेमचन्द का साहित्य देश के कोटि-कोटि जनों तक सुलभ करने में हमारा हाथ बँटायेंगे।

—प्रकाशक

मुद्रक—बालकृष्ण शास्त्री, ज्योतिष प्रकाश प्रेस, कालभैरव मार्ग, वाराणसी।

मूल्य—पचास नये पैसे

पंच परमेश्वर

जुम्मन शेख और अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता थी। साझे में खेती होती थी। कुछ लेन-देन में भी साझा था। एक को दूसरे पर अटल विश्वास था। जुम्मन जब हज करने गये थे, तब अपना घर अलगू को सौंप गये थे, और अलगू जब कभी बाहर जाते, तो जुम्मन पर अपना घर छोड़ देते थे। उनमें न खान-पान का व्यवहार था, न धर्म का नाता; केवल विचार मिलते थे। मित्रता का मूलमंत्र भी यही है।

इस मित्रता का जन्म उसी समय हुआ, जब दोनों मित्र बालक ही थे; और जुम्मन के पूज्य पिता, जुमराती, उन्हें शिक्षा प्रदान करते थे। अलगू ने गुरुजी की बहुत सेवा की थी, खूब रकाबियाँ माँजीं, खूब प्याले धोये। उनका हुक्का एक क्षण के लिए भी विश्राम न लेने पाता था; क्योंकि प्रत्येक चिलम अलगू को आध घंटे तक किताबों से अलग कर देती थी। अलगू के पिता पुराने विचारों के मनुष्य थे। उन्हें शिक्षा की अपेक्षा गुरु की सेवा-शुश्रूषा पर अधिक विश्वास था। वह कहते थे कि विद्या पढ़ने से नहीं आती; जो कुछ होता है गुरु के आशीर्वाद से। बस, गुरुजी की कृपा-दृष्टि चाहिए। अतएव यदि अलगू पर जुमराती शेख के आशीर्वाद अथवा सत्संग का कुछ फल न हुआ, तो यह मानकर संतोष कर लेगा कि विद्योपार्जन में मैंने यथाशक्ति कोई बात उठा नहीं रखी; विद्या उसके भाग ही में न थी, तो कैसे आती?

मगर जुमराती शेख स्वयं आशीर्वाद के कायल न थे। उन्हें अपने सोंटे पर अधिक भरोसा था और उसी सोंटे के प्रताप से आज आस-पास के गाँवों में जुम्मन की पूजा होती थी। उसके लिखे हुए रेहन-नामे या बैनामे पर कचहरी का मुहर्रिर भी कलम न उठा सकता था। हल्के का डाकिया, कांस्टेबिल और तहसील का चपरासी—सब उनकी कृपा की आकांक्षा रखते थे। अतएव अलगू का मान उसके

धन के कारण था, तो जुम्मन शेख अपनी अनमोल विद्या से ही सबके आदर-पात्र बने थे।

(२)

जुम्मन शेख की एक बूढ़ी खाला (मौसी) थी। उसके पास कुछ थोड़ी सी मिलकियत थी, परन्तु उसके निकट सम्बन्धियों में कोई न था। जुम्मन ने लंबे-चौड़े वादे करके वह मिलकियत अपने नाम लिखवा ली थी। जब तक दान-पत्र की रजिस्ट्री न हुई थी, तब तक खालाजान का खूब आदर-सत्कार किया गया। उन्हें खूब स्वादिष्ट पदार्थ खिलाये गये। हलवे-पुलाव की वर्षा-सी की गयी, पर रजिस्ट्री की मोहर ने इन खातिरदारियों पर भी मानों मुहर लगा दी। जुम्मन की पत्नी—करीमन—रोटियों के साथ कड़वी बातों के कुछ तेज-तीखे सालन भी देने लगी। जुम्मन शेख भी निठुर हो गये। अब बेचारी खालाजान को प्रायः नित्य ही ऐसी बातें सुननी पड़ती थीं—बुढ़िया न जाने कब तक जियेगी। दो-तीन बीघे ऊसर क्या दे दिया, मानो मोल ले लिया है! बघारी दाल के बिना रोटियाँ नहीं उतरतीं! जितना रुपया इसके पेट में झोंक चुके, उतने से तो अब तक गाँव मोल ले लेते।

कुछ दिन खालाजान ने सुना और सहा, पर जब न सहा गया, तब जुम्मन से शिकायत की। जुम्मन ने स्थानीय कर्मचारी—गृहस्वामिनी—के प्रबन्ध में दखल देना उचित न समझा। कुछ दिन तक और यों ही रो-धोकर काम चलता रहा। अन्त को एक दिन खाला ने जुम्मन से कहा—बेटा! तुम्हारे साथ मेरा निबाह न होगा। तुम मुझे रुपए दे दिया करो, मैं अपना पका-खा लूँगी।

जुम्मन ने धृष्टता के साथ उत्तर दिया—रुपए क्या यहाँ फलते हैं? खाला ने नम्रता से कहा—मुझे कुछ रूखा-सूखा चाहिए भी कि नहीं? जुम्मन ने गम्भीर स्वर से जवाब दिया—तो कोई यह थोड़े ही समझा था कि तुम मौत से लड़कर आयी हो?

खाला बिगड़ गयीं, उन्होंने पंचायत करने की धमकी दी। जुम्मन

हँसे, जिस तरह कोई शिकारी हिरन को जाल की तरफ जाते देखकर मन-ही-मन में हँसता है। वह बोले—हाँ जरूर पंचायत करो। फैसला हो जाय। मुझे भी यह रात-दिन की खटपट पसन्द नहीं।

पंचायत में किसकी जीत होगी, इस विषय में जुम्मन को कुछ भी सन्देह न था। आस-पास के गाँवों में ऐसा कौन था, जो उनके अनुग्रहों का ऋणी न हो? ऐसा कौन था, जो उनको शत्रु बनाने का साहस कर सके? किसमें इतना बल था जो उसका सामना कर सके? आसमान के फरिश्ते तो पंचायत करने आयेंगे नहीं।

(३)

इसके बाद कई दिन तक बूढ़ी खाला हाथ में एक लकड़ी लिये आस-पास के गाँवों में दौड़ती रहीं। कमर झुककर कमान हो गयी थी। एक-एक पग चलना दूभर था, मगर बात आ पड़ी थी। उसका निर्णय करना जरूरी था।

बिरला ही कोई भला आदमी होगा, जिसके सामने बुढ़िया ने दुःख के आँसू न बहाये हों। किसी ने तो यों ही ऊपरी मन से हूँ-हाँ करके टाल दिया, और किसी ने इस अन्याय पर जमाने को गालियाँ दीं। कहा—कब्र में पाँव लटकाये हुए हैं, आज मरे, कल दूसरा दिन, पर हवस नहीं मानती। अब तुम्हें क्या चाहिए? रोटी खाओ और अल्लाह का नाम लो। तुम्हें अब खेती-बारी से क्या काम? कुछ ऐसे सज्जन भी थे, जिन्हें हास्य-रस के रसास्वादन का अच्छा अवसर मिला। झुकी हुई कमर, पोपला मुँह, सन के-से बाल। इतनी सब सामग्रियाँ एकत्र हों, तब हँसी क्यों न आये? ऐसे न्यायप्रिय, दयालु दीन-वत्सल पुरुष बहुत कम थे, जिन्होंने उस अबला के दुखड़े को गौर से सुना हो और उसको सांत्वना दी हो। चारों ओर से घूम-घामकर बेचारी अलगू चौधरी के पास आयी। लाठी पटक दी और दम लेकर बोली—बेटा, तुम भी दम-भर के लिए मेरी पंचायत में चले आना।

अलगू—मुझे बुलाकर क्या करोगी? कई गाँव के आदमी तो

आयेंगे ही।

खाला—अपनी विपत तो सबके आगे रो आयी अब आने न आने का अखतियार उनको है।

अलगू—यों आने को आ जाऊँगा, मगर पंचायत में मुँह न खोलूँगा।

खाला—क्यों बेटा?

अलगू—अब इसका क्या जवाब दूँ? अपनी खुशी! जुम्मन मेरा पुराना मित्र है। उससे बिगाड़ नहीं कर सकता।

खाला—बेटा, क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे?

हमारे सोये हुए धर्म-ज्ञान की सारी सम्पत्ति लुट जाय, तो उसे खबर नहीं होती, परन्तु ललकार सुनकर वह सचेत हो जाता है। फिर उसे कोई जीत नहीं सकता। अलगू इस सवाल का कोई उत्तर न दे सका, पर उसके हृदय में ये शब्द गूँज रहे थे—

क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे?

(४)

सन्ध्या समय एक पेड़ के नीचे पंचायत बैठी। शेख जुम्मन ने पहले से ही फर्श बिछा रखा था। उन्होंने पान, इलायची, हुक्के, तंबाकू आदि का प्रबन्ध भी किया था। हाँ, वह स्वयं अलबत्ता अलगू चौधरी के साथ जरा दूर पर बैठे हुए थे। जब पंचायत में कोई आ जाता था, तब दबे हुए सलाम से उसका स्वागत करते थे। जब सूर्य अस्त हो गया और चिड़ियों की कलरवयुक्त पंचायत पेड़ों पर बैठी, तब यहाँ भी पंचायत शुरू हुई। फर्श की एक-एक अँगुल जमीन भर गयी, पर अधिकांश दर्शक ही थे। निमन्त्रित महाशयों में से केवल वे ही लोग पधारे थे, जिन्हें जुम्मन से अपनी कुछ कसर निकालनी थी। एक कोने में आग सुलग रही थी। नाई ताबड़तोड़ चिलम भर रहा था। यह निर्णय करना असम्भव था कि सुलगे हुए उपलों से अधिक धुआँ निकलता था या चिलम के दमों से! लड़के इधर-उधर दौड़ रहे थे।

कोई आपस में गाली-गलौज करते और कोई रोते थे। चारों तरफ कोलाहल मच रहा था। गाँव के कुत्ते इस जमाव को भोज समझकर झुण्ड के झुण्ड जमा हो गये थे।

पंच लोग बैठ गये, तो बूढ़ी खाला ने उनसे विनती की—पंचो, आज तीन साल हुए, मैंने अपनी सारी जायदाद अपने भानजे जुम्मन के नाम लिख दी थी। इसे आप लोग जानते ही होंगे। जुम्मन ने मुझे ताहयात रोटी-कपड़ा देना कबूल किया। साल भर तो मैंने इसके साथ रो-धोकर काटा पर अब रात-दिन का रोना नहीं सहा जाता। मुझे न पेट की रोटी मिलती है, न तन का कपड़ा। बेकस बेवा हूँ। कचहरी-दरबार नहीं कर सकती। तुम्हारे सिवा और किसको अपना दुःख सुनाऊँ? तुम लोग जो राह निकाल दो, उसी राह पर चलूँ। अगर मुझमें कोई ऐब देखो, तो मेरे मुँह पर थप्पड़ मारो। जुम्मन में बुराई देखो, तो उसे समझाओ, क्यों बेकस की आह लेता है! मैं पंचों का हुक्म सिर-माथे पर चढ़ाऊँगी।

रामधन मिश्र, जिनके कई असामियों को जुम्मन ने अपने गाँव में बसा लिया था, बोले—जुम्मन मियाँ, किसे पंच बदते हो? अभी से इसका निपटारा कर लो। फिर जो कुछ पंच कहेंगे, वही मानना पड़ेगा।

जुम्मन को इस समय सदस्यों में विशेषकर वे ही लोग दीख पड़े, जिनसे किसी-न-किसी कारण उनका वैमनस्य था। जुम्मन बोले—पंच का हुक्म अल्लाह का हुक्म है। खालाजान जिसे चाहें, उसे बदें। मुझे कोई उज्र नहीं।

ख़ाला ने चिल्लाकर कहा—अरे अल्लाह के बंदे! पंचों का नाम क्यों नहीं बता देता? कुछ मुझे भी तो मालूम हो।

जुम्मन ने क्रोध से कहा—अब इस वक्त मेरा मुँह न खुलवाओ। तुम्हारी बन पड़ी है, जिसे चाहो पंच बदो।

खालाजान जुम्मन के आक्षेप को समझ गयी; वह बोली—बेटा, खुदा से डरो। पंच न किसी के दोस्त होते हैं, न किसी के दुश्मन।

मगर रामधन मिश्र और अन्य पञ्च अलगू चौधरी की इस नीति-परायणता की प्रशंसा जी खोलकर कर रहे थे। वे कहते थे—इसका नाम पञ्चायत है। दूध-का-दूध और पानी-का-पानी कर दिया। दोस्ती दोस्ती की जगह है, किन्तु धर्म का पालन करना मुख्य है। ऐसे ही सत्यवादियों के बल पर पृथ्वी ठहरी है, नहीं तो वह कब की रसातल को चली जाती।

इस फैसले ने अलगू और जुम्मन की दोस्ती की जड़ हिला दी। अब वे साथ-साथ बातें करते नहीं दिखायी देते। इतना पुराना मित्रता-रूपी वृक्ष सत्य का एक झोंका भी न सह सका। सचमुच वह बालू की ही जमीन पर खड़ा था।

उनमें अब शिष्टाचार का अधिक व्यवहार होने लगा। एक-दूसरे की आवभगत ज्यादा करने लगा। वे मिलते-जुलते थे, मगर उसी तरह जैसे तलवार से ढाल मिलती है।

जुम्मन के चित्त में मित्र की कुटिलता आठों पहर खटका करती थी। उसे हर घड़ी यही चिन्ता रहती थी कि किसी तरह बदला लेने का अवसर मिले।

(६)

अच्छे कामों की सिद्धि में बड़ी देर लगती है, पर बुरे कामों की सिद्धि में यह बात नहीं होती; जुम्मन को भी बदला लेने का अवसर जल्द ही मिल गया। पिछले साल अलगू चौधरी बटेसर से बैलों की एक बहुत अच्छी गोईं मोल लाये थे। बैल पछाहीं जाती के सुन्दर, बड़े-बड़े सींगोंवाले थे। महीनों तक आस-पास के गाँवों के लोग उनके दर्शन करते रहे। दैवयोग से जुम्मन की पंचायत के एक महीने बाद इस जोड़ी का एक बैल मर गया। जुम्मन ने दोस्तों से कहा—यह दगाबाजी की सजा है। इन्सान सब्र भले ही कर जाय, पर खुदा नेकबद सब देखता है। अलगू को सन्देह हुआ कि जुम्मन ने बैल को विष दिला दिया है। चौधराइन ने भी जुम्मन पर ही इस दुर्घटना का दोषारोपण

किया, उसने कहा—जुम्मन ने कुछ कर-करा दिया है। चौधराइन और करीमन में इस विषय पर एक दिन खूब ही वाद-विवाद हुआ। दोनों देवियों ने शब्द-बाहुल्य की नदी बहा दी। व्यंग्य, वक्रोक्ति, अन्योक्ति और उपमा आदि अलंकारों में बातें हुईं। जुम्मन ने किसी तरह शान्ति स्थापित की। उन्होंने अपनी पत्नी को डाँट-डपटकर समझा दिया। वह उसे उस रणभूमि से हटा भी ले गये। उधर अलगू चौधरी ने समझाने-बुझाने का काम अपने तर्कपूर्ण सोंटे से लिया।

अब अकेला बैल किस काम का? उसका जोड़ बहुत ढूँढ़ा गया पर न मिला। निदान यह सलाह ठहरी कि इसे बेच डालना चाहिए। गाँव में एक समझू साहु थे, वह इक्का-गाड़ी हाँकते थे। गाँव से गुड़-घी लादकर मण्डी ले जाते, मण्डी से तेल-नमक भर लाते और गाँव में बेचते। इस बैल पर उनका मन लहराया। उन्होंने सोचा, यह बैल हाथ लगे, तो दिन-भर में बेखटके तीन खेपें हों। आजकल तो एक ही खेप के लाले पड़े रहते हैं। बैल देखा, गाड़ी में दौड़ाया, बाल-भौंरी की पहचान करायी, मोल-तोल किया और उसे लाकर द्वार पर बाँध ही दिया। एक महीने में दाम चुकाने का वादा ठहरा। चौधरी को भी ग़रज़ थी ही, घाटे की परवाह न की।

समझू साहु ने नया बैल पाया, तो लगे उसे रगेदने। वह दिन में तीन-तीन, चार-चार खेपें करने लगे। न चारे की फ़िक्र थी, न पानी की; बस, खेपों से काम था। मंडी ले गये, वहाँ कुछ सूखा भूसा सामने डाल दिया। बेचारा जानवर अभी दम भी न लेने पाया था कि फिर जोत दिया। अलगू चौधरी के घर था, तो चैन की बंशी बजती थी। बैलराम छठे-छमाहे कभी बहली में जोते जाते थे। तब खूब उछलते-कूदते और कोसों तक दौड़ते चले जाते थे। वहाँ बैलराम का रातिब था साफ पानी, दली हुई अरहर की दाल और भूसे के साथ खली, और यही नहीं, कभी-कभी घी का स्वाद भी चखने को मिल जाता था। शाम-सबेरे एक आदमी खरहरे करता, पोंछता और सह-

लाता था। कहाँ वह सुख-चैन, कहाँ यह आठों पहर की खपत ! महीने-भर ही में वह पिस-सा गया। इक्के का जुआ देखते ही उसका लहू सूख जाता था। एक-एक पग चलना दूभर था। हड्डियाँ निकल आयी थीं, पर था वह पानीदार, मार की बरदाश्त न थी।

एक दिन चौथी खेप में साहुजी ने दूना बोझा लादा। दिन-भर का थका जानवर, पैर न उठते थे। उस पर साहुजी कोड़े फटकारने लगे। बस, फिर क्या था, बैल कलेजा तोड़कर चला। कुछ दूर दौड़ा और चाहा कि जरा दम ले लूँ, पर साहुजी को जल्द पहुँचने की फिक्र थी; अतएव उन्होंने कई कोड़े बड़ी निर्दयता से फटकारे। बैल ने एक बार फिर जोर लगाया; पर अबकी बार शक्ति ने जवाब दे दिया। वह धरती पर गिर पड़ा, और ऐसा गिरा कि फिर न उठा। साहुजी ने बहुत पीटा, टाँग पकड़कर खींचा, नथनों में लकड़ी ठूँस दी; पर कहीं मृतक भी उठ सकता है ? तब साहुजी को कुछ शंका हुई। उन्होंने बैल को गौर से देखा, खोलकर अलग किया; और सोचने लगे कि गाड़ी कैसे घर पहुँचे। बहुत चीखे-चिल्लाये; पर देहात का रास्ता बच्चों की आँख की तरह साँझ होते ही बन्द हो जाता है। कोई नजर न आया। आस-पास कोई गाँव भी न था। मारे क्रोध के उन्होंने मरे हुए बैल पर और दुर्रे लगाये और कोसने लगे—अभागे ! तुझे मरना ही था, तो घर पहुँचकर मरता ! ससुरा बीच रास्ते ही मर रहा ! अब गाड़ी कौन खींचे ? इस तरह साहुजी खूब जले-भुने। कई बोरे गुड़ और कई पीपे घी उन्होंने बेचे थे, दो ढाई सौ रुपये कमर में बँधे थे। इसके सिवा गाड़ी पर कई बोरे नमक के थे, अतएव छोड़कर जा भी न सकते थे। लाचार, बेचारे गाड़ी पर ही लेट गये। वहीं रत-जगा करने की ठान ली, चिलम पी, गाया फिर हुक्का पिया। इस तरह साहुजी आधी रात तक नींद को बहलाते रहे। अपनी जान में तो वह जागते ही रहे, पर पौ फटते ही जो नींद टूटी और कमर पर हाथ रखा, तो थैली गायब ! घबराकर इधर-उधर देखा, तो कई

कनस्तर तेल भी नदारद! अफसोस में बेचारे ने सिर पीट लिया और पछाड़ खाने लगे। प्रातःकाल रोते-बिलखते घर पहुँचे। सहुआइन ने जब यह बुरी सुनावनी सुनी, तब पहले रोयी, फिर अलगू चौधरी को गालियाँ देने लगी—निगोड़े ने ऐसा कुलच्छनी बैल दिया कि जनम-भर की कमाई लुट गयी!

इस घटना को हुए कई महीने बीत गये। अलगू अब अपने बैल के दाम माँगते तब साहु और सहुआइन, दोनों ही झल्लाये हुए कुत्तों की तरह चढ़ बैठते और अंड-बंड बकने लगते—वाह! यहाँ तो सारे जन्म की कमाई लुट गयी, सत्यानाश हो गया, इन्हें दामों की पड़ी है। मुर्दा बैल दिया था, उस पर दाम माँगने चले हैं! आँखों में धूल झोंक दी, सत्यानाशी बैल गले बाँध दिया, हमें निरा पोंगा ही समझ लिया! हम भी बनिये के बच्चे हैं, ऐसे बुद्धू कहीं और होंगे। पहले जाकर किसी गड्हे में मुँह धो आओ, तब दाम लेना, न जी मानता हो, तो हमारा बैल खोल ले जाओ। महीना-भर के बदले दो महीना जोत लो। और क्या लोगे?

चौधरी के अशुभचिन्तकों की कमी न थी। ऐसे अवसरों पर सभी एकत्र हो जाते और साहुजी के बर्राने की पुष्टि करते। परन्तु डेढ़ सौ रुपये से इस तरह हाथ धो लेना आसान न था। एक बार वह भी गरम पड़े। साहुजी बिगड़कर लाठी ढूँढ़ने घर चले गये। अब सहु-आइन जी ने मैदान लिया। प्रश्नोत्तर होते-होते हाथा-पाई की नौबत आ पहुँची। सहुआइन ने घर में घुसकर किवाड़ बन्दकर लिये। शोर-गुल सुनकर गाँव के भलेमानस जमा हो गये। उन्होंने दोनों को समझाया। साहुजी को दिलासा देकर घर से निकाला। यह परामर्श देने लगे कि इस तरह से काम न चलेगा। पंचायत कर लो। जो कुछ तय हो जाय, उसे स्वीकार कर लो। साहुजी राजी हो गये। अलगू ने भी हामी भर ली।

पंचायत की तैयारियाँ होने लगीं। दोनों पक्षों ने अपने-अपने दल

बनाने शुरू किये। इसके बाद तीसरे दिन उसी वृक्ष के नीचे पंचायत बैठी। वही सन्ध्या का समय था। खेतों में कौए पंचायत कर रहे थे। विवाद-ग्रस्त विषय यह था कि मटर की फलियों पर उनका कोई स्वत्व है या नहीं, और जब तक यह प्रश्न हल न हो जाय, तब तक वे रखवाले की पुकार पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करना आवश्यक समझते थे। पेड़ की डालियों पर बैठी शुक-मण्डली में यह प्रश्न छिड़ा हुआ था कि मनुष्यों को उन्हें बेमुरौवत कहने का क्या अधिकार है, जब उन्हें स्वयं अपने मित्रों से दगा करने में भी संकोच नहीं होती।

पञ्चायत बैठ गयी, तो रामधन मिश्र ने कहा—अब देरी क्या है? पंचों का चुनाव हो जाना चाहिये। बोलो चौधरी, किस-किस को पंच बदते हो।

अलगू ने दीन भाव से कहा—समझू साहु ही चुन लें।

समझू खड़े हुए और कड़ककर बोले—मेरी ओर से जुम्मन शेख।

जुम्मन का नाम सुनते ही अलगू चौधरी का कलेजा धक्-धक् करने लगा, मानो किसी ने अचानक थप्पड़ मार दिया हो। रामधन अलगू के मित्र थे। वह बात को ताड़ गये। पूछा—क्यों चौधरी, तुम्हें कोई उज्र तो नहीं?

चौधरी ने निराश होकर कहा—नहीं, मुझे क्या उज्र होगा।

* * *

अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान बहुधा संकुचित व्यवहारों का सुधारक होता है। जब हम राह भूलकर भटकने लगते हैं, तब यही ज्ञान हमारा विश्वसनीय पथ-प्रदर्शक बन जाता है।

पत्र-सम्पादक अपनी शांति-कुटी में बैठा हुआ कितनी धृष्टता और और स्वतन्त्रता के साथ अपनी प्रबल लेखनी से मंत्रि-मण्डल पर आक्रमण करता है; परन्तु ऐसे अवसर आते हैं, जब स्वयं मन्त्रि-मंडल में सम्मिलित होता है। मंडल के भवन में पग धरते ही उसकी लेखनी कितनी मर्मज्ञ, कितनी विचारशील, कितनी न्यायपरायण हो जाती

है, इसका कारण उत्तरदायित्व का ज्ञान है। नवयुवक युवावस्था में कितना उद्दण्ड रहता है। माता-पिता उसकी ओर से कितने चिंतित रहते हैं। वे उसे कुल-कलंक समझते हैं, परन्तु थोड़े समय में परिवार का बोझ सिर पर पड़ते ही वह अव्यवस्थित चित्त, उन्मत्त युवक कितना धैर्यशील, कैसा शान्त-चित्त हो जाता है, यह भी उत्तरदायित्व के ज्ञान का फल है।

जुम्मन शेख के मन में भी सरपंच का उच्च स्थान ग्रहण करते ही अपनी जिम्मेदारी का भाव पैदा हुआ। उसने सोचा, मैं इस वक्त न्याय और धर्म के सर्वोच्च आसन पर बैठा हूँ। मेरे मुँह से इस समय जो कुछ निकलेगा, वह देववाणी के सदृश है—और देववाणी में मेरे मनोविकारों का कदापि समावेश न होना चाहिए, मुझे सत्य से जौ-भर भी टलना उचित नहीं!

पंचों ने दोनों पक्षों से सवाल-जवाब करने शुरू किये। बहुत देर तक दोनों दल अपने-अपने पक्ष का समर्थन करते रहे। इस विषय में तो सब सहमत थे कि समझू को बैल का मूल्य देना चाहिए। परन्तु दो महाशय इस कारण रियायत करना चाहते थे कि बैल के मर जाने से समझू की हानि हुई। इसके प्रतिकूल दो सदस्य बैल के अतिरिक्त समझू को दण्ड भी देना चाहते थे। जिससे फिर किसी को पशुओं के साथ ऐसी निर्दयता करने का साहस न हो। अन्त में जुम्मन ने फैसला सुनाया—

'अलगू चौधरी और समझू साहु! पंचों ने तुम्हारे मामले पर अच्छी तरह विचार किया। समझू को उचित है कि बैल का पूरा दाम दें। जिस वक्त उन्होंने बैल लिया, उसे कोई बीमारी न थी। अगर उसी समय दाम दे दिये जाते, तो आज समझू उसे फेर लेने का आग्रह न करते। बैल की मृत्यु केवल इस कारण हुई कि उससे बड़ा कठिन परिश्रम लिया गया और उसके दाने-चारे का कोई अच्छा प्रबन्ध न किया गया।'

रामधन मिश्र बोले—समझू ने बैल को जान-बूझकर मारा है, अतएव उससे दण्ड लेना चाहिए।

जुम्मन बोले—यह दूसरा सवाल है। हमको इससे कोई मतलब नहीं।

झगड़ू साहु ने कहा—समझू के साथ कुछ रिआयत होनी चाहिए।

जुम्मन बोले—यह अलगू चौधरी की इच्छा पर निर्भर है। वह रिआयत करें, तो उनकी भलमनसी है।

अलगू चौधरी फूले न समाये। उठ खड़े हुए और जोर से बोले—पंच-परमेश्वर की जय!

इसके साथ ही चारों ओर से प्रतिध्वनि हुई—पंच-परमेश्वर की जय!

प्रत्येक मनुष्य जुम्मन की नीति को सराहता था—इसे कहते हैं न्याय! यह मनुष्य का काम नहीं, पंच में परमेश्वर वास करते हैं; यह उन्हीं की महिमा है। पंच के सामने खोटे को कौन खरा कह सकता है?

थोड़ी देर बाद जुम्मन अलगू के पास आये और उनके गले लिपटकर बोले—भैया, जब से तुमने मेरी पंचायत की तब से मैं तुम्हारा प्राणघातक शत्रु बन गया था; पर आज मुझे ज्ञात हुआ कि पंच के पद पर बैठकर न कोई किसी का दोस्त है, न दुश्मन। न्याय के सिवा उसे और कुछ नहीं सूझता। आज मुझे विश्वास हो गया कि पंच की जबान से खुदा बोलता है।

अलगू रोने लगे। इस पानी से दोनों के दिलों का मैल धुल गया। मित्रता की मुरझाई लता फिर हरी हो गयी।

सवा सेर गेहूँ

किसी गाँव में शंकर नाम का एक कुरमी किसान रहता था। सीधा-सादा गरीब आदमी था, अपने काम से काम, न किसी के लेने में, न देने में। छक्का-पंजा न जानता था, छल-प्रपञ्च की उसे छूत भी न लगी थी, ठगे जाने की चिंता न थी, ठग-विद्या न जानता था। भोजन मिला, खा लिया; न मिला, चबेने पर काट दी, चबेने भी न मिला, तो पानी पी लिया और राम का नाम लेकर सो रहा। किन्तु जब कोई अतिथिद्वार पर आ जाता था, तो उसे इस निवृत्ति-मार्ग का त्याग करना पड़ता था। विशेषकर जब साधु-महात्मा पदार्पण करते थे, तो उसे अनिवार्यतः सांसारिकता की शरण लेनी पड़ती थी। खुद भूखा सो सकता था पर साधु को कैसे भूखा सुलाता, भगवान् के भक्त ठहरे।

एक दिन संध्या समय एक महात्मा ने आकर उसके द्वार पर डेरा जमाया। तेजस्वी मूर्ति थी, पीताम्बर गले में, जटा सिर पर, पीतल का कमण्डल हाथ में, खड़ाऊँ पैर में, ऐनक आँखों पर, सम्पूर्ण वेष उन महात्माओं का-सा था जो रईसों के प्रासादों में तपस्या, हवागाड़ियों पर देवस्थानों की परिक्रमा और योग-सिद्धि प्राप्त करने के लिए रुचिकर भोजन करते हैं। घर में जौ का आटा था, वह उन्हें कैसे खिलाता। प्राचीन काल में जौ चाहे जो कुछ महत्व रखता हो, पर वर्तमान युग में जौ का भोजन सिद्ध पुरुषों के लिए दुष्पाच्य होता है। बड़ी चिंता हुई, महात्मा जी को क्या खिलाऊँ। आखिर निश्चय किया कि कहीं से गेहूँ का आटा उधार लाऊँ। पर गाँव-भर में गेहूँ का आटा न मिला। गाँव में सब मनुष्य-ही-मनुष्य थे, देवता एक भी न था, अतएव देवताओं का पदार्थ कैसे मिलता। सौभाग्य से गाँव के विप्र महाराज के यहाँ से थोड़े-से मिल गये। उनसे सवा सेर गेहूँ उधार लिया और स्त्री से कहा कि पीस दे। महात्मा ने भोजन किया, लम्बा तानकर सोये। प्रातःकाल आशीर्वाद देकर अपनी राह ली।

विप्र महाराज साल में दो वार खलिहानी लिया करते थे। शंकर ने दिल में कहा, सवा सेर गेहूँ क्या लौटाऊँ, पंसेरी के बदले कुछ ज्यादा खलिहानी दे दूँगा, यह भी समझ जायँगे, मैं भी समझ जाऊँगा। चैत में जब विप्रजी पहुँचे तो डेढ़ पसेरी के लगभग गेहूँ दे दिया और अपने को उऋण समझकर उसकी कोई चरचा न की। विप्रजी ने फिर कभी न माँगा। सरल शंकर को क्या मालूम था कि यह सवा सेर गेहूँ चुकाने के लिए मुझे दूसरा जन्म लेना पड़ेगा।

सात साल गुजर गये। विप्रजी विप्रसे महाजन हुए, शंकर किसान से मजूर हो गया। उसका छोटा भाई मंगल उससे अलग हो गया था। एक साथ रहकर दोनों किसान थे, अलग होकर मजूर हो गये थे। शंकर ने चाहा कि द्वेष की आग भड़कने न पाये, किन्तु परिस्थिति ने उसे विवश कर दिया। जिस दिन अलग-अलग चूल्हे जले, वह फूट-फूटकर रोया। आज से भाई-भाई शत्रु हो जायँगे एक रोयेगा तो दूसरा हँसेगा, एक के घर मातम होगा तो दूसरे के घर गुलगुले पकेंगे। प्रेम का बंधन, खून का बंधन, दूध का बन्धन आज टूटा जाता है। उसने भगीरथ-परिश्रम से कुल-मर्यादा का वृक्ष लगाया था, उसे अपने रक्त से सींचा था। उसका जड़ से उखड़ना देखकर उसके हृदय के टुकड़े हुए जाते थे। सात दिनों तक उसने दाने की सूरत तक न देखी। दिन भर जेठ की धूप में काम करता और रात को मुँह लपेटकर सो रहता। इस भीषण वेदना और दुस्सह कष्ट ने रक्त को जला दिया, मांस और मज्जा को घुला दिया। बीमार पड़ा तो महीनों खाट से न उठा। अब गुजर-बसर कैसे हो? पाँच बीघे के आधे खेत रह गये, एक बैल रहा खेती क्या खाक होती! अंत को यहाँ तक नौबत पहुँची कि खेती केवल मर्यादा-रक्षा का साधन मात्र रह गयी, जीविका का भार मजूरी पर आ पड़ा।

सात वर्ष बीत गये, एक दिन शंकर मजूरी करके लौटा, तो राह में विप्रजी ने टोककर कहा—शंकर, कल आके अपने बीज-बेंग का

हिसाब कर ले। तेरे यहाँ साढ़े पाँच मन गेहूँ कबसे बाकी पड़े हुए हैं और तू देने का नाम नहीं लेता, हजम करने का मन है क्या ?

शंकर ने चकित होकर कहा—मैंने तुमसे कब गेहूँ लिये थे जो साढ़े पाँच मन हो गये ? तुम भूलते हो, मेरे यहाँ किसी का न छटाँक-भर अनाज है, न एक पैसा उधार।

विप्र—इसी नीयत का तो वह फल भोग रहे हो कि खाने को नहीं जुड़ता।

यह कहकर विप्रजी ने उस सवा सेर गेहूँ का जिक्र किया, जो आज से ७ वर्ष पहले शंकर को दिये थे। शंकर सुनकर अवाक् रह गया। ईश्वर ! मैंने इन्हें कितनी बार खलिहानी दी, इन्होंने मेरा कौन-सा काम किया ? जब पोथी-पत्रा देखने, साइत-सगुन विचारने द्वार पर आते थे, कुछ-न-कुछ 'दक्षिना' ले ही जाते थे। इतना स्वार्थ! सवा सेर अनाज को अंडे की भाँति सेकर आज यह पिशाच खड़ा कर दिया जो मुझे निगल जायगा। इतने दिनों में एक बार भी कह देते तो गेहूँ मैं तोलकर दे देता, क्या इसी नीयत से चुप साधे बैठे रहे ? बोला—महाराज, नाम लेकर तो मैंने उतना अनाज नहीं दिया, पर कई बार खलिहानी में सेर-सेर, दो-दो सेर दिया है। अब आप आज साढे पाँच मन माँगते हैं मैं कहाँ से दूँगा।

विप्र—लेखा जौ-जौ, बखसीस सौ-सौ, तुमने जो-कुछ दिया होगा, उसका कोई हिसाब नहीं, चाहे एक की जगह चार पंसेरी दे दी। तुम्हारे नाम बही में साढ़े पाँच मन लिखा हुआ है, जिससे चाहे हिसाब लगवा लो। दे दो तो तुम्हारा नाम छेंक दूँ, नहीं तो और भी बढ़ता रहेगा।

शंकर—पाँडे, क्यों एक गरीब को सताते हो, मेरे खाने का ठिकाना नहीं, इतना गेहूँ किसके घर से लाऊँगा ?

विप्र—जिसके घर से चाहो लाओ, मैं छटाँक-भर भी न छोड़ूँगा, यहाँ न दोगे, भगवान् के घर तो दोगे ?

शङ्कर काँप उठा। हम पढ़े-लिखे आदमी होते तो कह देते, अच्छी

बात है, ईश्वर के घर ही देंगे, वहाँ की तौल यहाँ से कुछ बड़ी तो न होगी। कम-से-कम इसका कोई प्रमाण हमारे पास नहीं, फिर उसकी क्या चिन्ता। किन्तु शङ्कर इतना तार्किक, इतना व्यवहार-चतुर न था। एक तो ऋण—वह भी ब्राह्मण का—बही में नाम रह गया तो सीधे नरक में जाऊँगा, इस ख्याल ही से उसे रोमांच हो आया। बोला—महाराज, तुम्हारा जितना होगा यहीं दूँगा, ईश्वर के यहाँ क्यों दूँ, इस जनम में तो ठोकर खा ही रहा हूँ, उस जनम के लिए क्यों काँटे बोऊँ? मगर यह कोई नियाव नहीं है। तुमने राई का पर्वत बना दिया, ब्राह्मण होके तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था। उसी घड़ी तगादा करके ले लिया होता, आज मेरे सिर पर इतना बड़ा बोझ क्यों पड़ता? मैं तो दे दूँगा, लेकिन तुम्हें भगवान के यहाँ जवाब देना पड़ेगा।

विप्र—वहाँ का डर तुम्हें होगा, मुझे क्यों होने लगा। वहाँ तो सब अपने ही भाई-बन्धु हैं। ऋषि-मुनि सब तो ब्राह्मण ही हैं, देवता ब्राह्मण हैं, जो कुछ बने-बिगड़ेगी, सँभाल लेंगे। तो कब देते हो?

शङ्कर—मेरे पास रक्खा तो है नहीं, किसी से माँग-जाँचकर लाऊँगा तभी न दूँगा!

विप्र—मैं यह न मानूँगा। सात साल हो गये, अब एक दिन का भी मुलाहिजा न करूँगा। गेहूँ नहीं दे सकते, तो दस्तावेज लिख दो।

शङ्कर—मुझे तो देना है, चाहे गेहूँ लो, चाहे दस्तावेज लिखाओ। किस हिसाब से दाम रखोगे?

विप्र—बाजार-भाव ५ सेर का है, तुम्हें ५। सेर का काट दूँगा।

शङ्कर—जब दे ही रहा हूँ तो बाजार-भाव काटूँगा। पाव-भर छुड़ाकर क्यों दोषी बनूँ।

हिसाब लगाया गया तो गेहूँ के दाम ६०) हुए। ६०) का दस्तावेज लिखा गया, ३०) सैकड़े सूद। साल भर में न देने पर सूद का दर ३॥) सैकड़े। ॥) का स्टाम्प, १) दस्तावेज़ की तहरीर शंकर को ऊपर से देनी पड़ी।

गाँव-भर ने विप्रजी की निंदा की, लेकिन मुँह पर नहीं। महाजन से सभी का काम पड़ता है, उसके मुँह कौन आये।

(३)

शंकर ने साल-भर तक कठिन तपस्या की। मीयाद के पहले रुपया अदा करने का उसने व्रत-सा कर लिया। दोपहर को पहले भी चूल्हा न जलता था, चबेने पर बसर होती थी, अब वह भी बन्द हुआ। केवल लड़के के लिए रात को रोटियाँ रख दी जातीं। पैसे रोज़ का तम्बाकू पी जाता था, यही एक व्यसन था जिसका वह कभी त्याग न कर सका था। अब वह व्यसन भी इस कठिन व्रत की भेंट हो गया। उसने चिलम पटक दी, हुक्का तोड़ दिया और तम्बाकू की हाँडी चूर-चूर कर डाली। कपड़े पहले भी त्याग की चरम सीमा तक पहुँच चुके थे, अब वह प्रकृति की न्यूनतम रेखाओं में आबद्ध हो गये। शिशिर की अस्थि-वेधक शीत को उसने आग तापकर काट दिया। इस ध्रुव संकल्प का फल आशा से बढ़कर निकला। साल के अन्त में उसके पास ६०) जमा हो गये। उसने समझा, पण्डितजी को इतने रुपए दे दूँगा और कहूँगा महाराज, बाकी रुपए भी जल्दी ही आपके सामने हाजिर करूँगा। १५) की तो और बात है, क्या पण्डितजी इतना भी न मानेंगे? उसने रुपए लिये और ले जाकर पण्डितजी के चरणकमलों पर अर्पण कर दिये। पंडितजी ने विस्मित होकर पूछा—किसी से उधार लिये क्या?

शंकर—नहीं महाराज, आपके असीस से अबकी मजूरी अच्छी मिली।

विप्र—लेकिन यह तो ६०) ही हैं?

शंकर—हाँ महाराज, इतने अभी ले लीजिए, बाकी मैं दो-तीन महीने में दूँगा, मुझे उरिन कर दीजिए!

विप्र—उरिन तो जभी होगे जब मेरी कौड़ी-कौड़ी चुका दोगे। जाकर मेरे १५) और लाओ।

शंकर—महाराज, इतनी दया करो, अब साँझ की रोटियों का

भी ठिकाना नहीं है, गाँव में हैं तो कभी-न-कभी दे ही दूँगा ।

विप्र—मैं यह रोग नहीं पालता, न बहुत बातें करना जानता हूँ । अगर मेरे पूरे रुपये न मिलेंगे तो आज से ३।।) सैकड़े का ब्याज लगेगा । अपने रुपए चाहे अपने घर में रखो, चाहे मेरे यहाँ छोड़ जाओ ।

शंकर—अच्छा, जितना लाया हूँ उतना रख लीजिए । मैं जाता हूँ, कहीं से १५) और लाने की फिक्र करता हूँ ।

शंकर ने सारा गाँव छान मारा, मगर किसी ने रुपए न दिए, इसलिए नहीं कि उसका विश्वास न था, या किसी के पास रुपए न थे, बल्कि इसीलिए कि पंडितजी के शिकार को छोड़ाने की किसी की हिम्मत न थी ।

(४)

क्रिया के पश्चात् प्रतिक्रिया नैसर्गिक नियम है । शंकर साल-भर तक तपस्या करने पर भी जब ऋण से मुक्त होने में सफल न हो सका तो उसका संयम निराशा के रूप में परिणत हो गया । उसके समझ लिया जब इतना कष्ट सहने पर भी साल-भर में ६०) से अधिक न जमा कर सका, तो अब और कौन-सा उपाय है जिसके द्वारा इसके दूने रुपए जमा हों । जब सिर पर ऋण का बोझ ही लादना है तो क्या मन का और क्या सवा मन का। उसका उत्साह क्षीण हो गया, मेहनत से घृणा हो गई । आशा उत्साह की जननी है, आशा में तेज है, बल है, जीवन है । आशा ही संसार की संचालक शक्ति है । शंकर आशाहीन होकर उदासीन हो गया । वह जरूरतें, जिनको उसने साल-भर तक टाल रखा था, अब द्वार पर खड़ी होनेवाली भिखारिणी न थी, बल्कि छाती पर सवार होनेवाली पिशाचिनियाँ थीं, जो अपनी भेंट लिये बिना जान नहीं छोड़तीं । कपड़ों में चकत्तियों के लगने की भी एक सीमा होती है । अब शंकर को चिट्ठा मिलता तो वह रुपया जमा न करता, कभी कपड़े लाता, कभी खाने की कोई वस्तु । जहाँ पहले तमाखू ही पिया करता था, वहाँ अब गाँजे और चरस का चस्का भी लगा । उसे अब

रुपये अदा करने की कोई चिन्ता न थी, मानो उसके ऊपर किसी का एक पैसा भी नहीं आता। पहले जूड़ी होती थी, पर वह काम करने अवश्य जाता था, अब काम पर न जाने के लिए बहाना खोजा करता।

इस भाँति तीन वर्ष निकल गये। विप्रजी महाराज ने एक बार भी तकाजा न किया। वह चतुर शिकारी की भाँति अचूक निशाना लगाना चाहते थे, पहले से शिकार को चौंकाना उनकी नीति के विरुद्ध था।

एक दिन पंडितजी ने शंकर को बुलाकर हिसाब दिखाया। ६०) जो जमा थे वह मिनहा करने पर अब भी शंकर के जिम्मे १२०) निकले।

शंकर—इतने रुपये तो उसी जन्म में दूँगा, इस जन्म में नहीं हो सकते।

विप्र—इसी जन्म में लूँगा। मूल न सही, सूद तो देना ही पड़ेगा।

शंकर—एक बैल है, वह ले लीजिए; एक झोपड़ी है वह ले लीजिए। और मेरे पास रखा क्या है?

विप्र—मुझे बैल-बधिया लेकर क्या करना है? मुझे देने को तुम्हारे पास बहुत कुछ है।

शंकर—और क्या है महाराज?

विप्र—कुछ नहीं है तुम तो हो। आखिर तुम भी कहीं मजूरी करने जाते ही हो, मुझे भी खेती के लिए मजूर रखना ही पड़ता है। सूद में तुम हमारे यहाँ काम किया करो, जब सुभीता हो मूल भी दे देना। सच तो यों है कि अब तुम किसी दूसरी जगह काम करने नहीं जा सकते, जब तक मेरे रुपये न चुका दो। तुम्हारे पास कोई जायदाद नहीं है, इतनी बड़ी गड़ी गठरी मैं किस एतबार पर छोड़ दूँ। कौन इसका जिम्मा लेगा कि तुम मुझे महीने-महीने सूद देते जाओगे और कहीं कमाकर जब तुम मुझे सूद भी नहीं दे सकते, तो मूल की कौन कहे?

शंकर—महाराज, सूद में तो काम करूँगा और खाऊँगा क्या?

विप्र—तुम्हारी घरवाली है, लड़के हैं, क्या वे हाथ-पाँव कटाके बैठेंगे? रहा मैं, तुम्हें आध सेर जौ रोज कलेवा के लिए दे दिया

करूँगा। ओढ़ने को साल में एक कंबल पा जाओगे, एक मिरजई भी बनवा दिया करूँगा और क्या चाहिए। यह सच है कि और लोग तुम्हें रोज देते हैं लेकिन मुझे ऐसी गरज नहीं है, तुम्हें अपने रुपये भराने के लिए रखता हूँ।

शंकर ने कुछ देर तक गहरी चिंता में पड़े रहने के बाद कहा—महाराज, यह तो जन्म-भर की गुलामी हुई।

विप्र—गुलामी समझो, चाहे मजदूरी समझो। मैं अपने रुपए भराये बिना तुमको कभी न छोड़ूँगा। तुम भागोगे तो तुम्हारा लड़का भरेगा। हाँ, जब कोई न रहेगा तब की बात दूसरी है।

इस निर्णय की कहीं अपील न थी। मजूर की जमानत कौन करता, कहीं शरण न थी, भागकर कहाँ जाता; दूसरे दिन से उसने विप्रजी के यहाँ काम करना शुरू कर दिया। सवा सेर गेहूँ की बदौलत उम्र-भर के लिए गुलामी की बेड़ी पैरों में डालनी पड़ी। उस अभागे को अब अगर किसी विचार से संतोष होता था तो वह यह था कि यह मेरे पूर्व जन्म का संस्कार है। स्त्री को वे काम करने पड़ते थे, जो उसने कभी न किये थे, बच्चे दानों को तरसते थे, लेकिन शंकर चुपचाप देखने के सिवा और कुछ न कर सकता था। वह गेहूँ के दाने किसी देवता के शाप की भाँति यावज्जीवन उसके सिरे से न उतरे।

(५)

शंकर ने विप्रजी के यहाँ २० वर्ष तक गुलामी करने के बाद इस दुस्सार संसार से प्रस्थान किया। १२०) अभी तक उसके सिर पर सवार थे। पंडितजी ने उस गरीब को ईश्वर के दरबार में कष्ट देना उचित न समझा, इतने अन्यायी, इतने निर्दय न थे। उसके जवान बेटे की गरदन पकड़ी। आज तक वह विप्रजी के यहाँ काम करता है। उसका उद्धार कब होगा, होगा भी या नहीं, ईश्वर ही जानें।

पाठक! इस वृत्तांत को कपोल-कल्पित न समझिए। यह सत्य घटना है। ऐसे शंकरों और ऐसे विप्रों से दुनिया खाली नहीं है।

